© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 1 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

प्रारम्भिक भारत में भू–स्वामित्व एवं भूमिदान

डॉ0 अजिता ओझा
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सैद्धान्तिक रूप से प्रारम्भ में जंगल साफ करके उसे कृषि योग्य बनाने वाला ही भूमिखण्ड का स्वामी माना जाता था। किन्तु जैसे–जैसे आर्थिक प्रगति होती गई वैसे–वैसे अतिरेक उत्पादन प्राप्त करने के लिए कृषि योग्य भूमि की मांग भी बढ़ती गई जिसके फलस्वरूप 300 ई0 आस–पास न केवल खेती पर अधिकार होना ही पर्याप्त समझा गया बल्कि अधिकार–पत्र होना भी आवश्यक माना गया।

जहाँ मनु ने भूमि के स्वामी को भूमि अपनी इच्छानुसार बेचने, दान देने या गिरवी रखने की अनुमति प्रदान की है[1], वहीं याज्ञवल्क्य (100ई.–300ई.) और नारद (100ई.–400ई.) जैसे व्यवस्थाकारों द्वारा मनु से इतर भूमि–अधिकार–पत्र की बात की गई है। याज्ञवल्क्य स्मृति में स्पष्ट लिखा है कि भूमि पर स्वामित्व होने के लिए अधिकार (भोग) और अधिकार–पत्र (आगम) दोनों होना आवश्यक है।[2] नारद का कथन है कि यदि कोई व्यक्ति बिना अधिकार–पत्र के किसी सम्पति पर सौ वर्ष तक भी अधिकार जमाये रखे तो वह चोर है।[3] परन्तु व्यवहारिक रूप उन्होंने 30 वर्ष तक किसी भूखण्ड पर अधिकार रखने वाले व्यक्ति को उसका स्वामी माना है।[4] स्पष्ट है कि कृषि–भूमि पर स्वामित्व व राज्य का अधिकार दो अलग–अलग बातें थीं। व्यक्तिगत स्वामित्व की धारणा के प्रबल होते हुए भी राज्य के स्वामित्व की धारणा को आलोच्यकाल में नकारा नहीं जा सकता था। मनु ने भी अपने विचारों में राज्य को भूमि का अधिपति मानते हुए उसे भूमि का स्वामी माना है।[5] इसी प्रकार मिलिन्दपन्हों में भी पृथ्वी पर स्थित सभी शहरों, समुद्रतटों, खानों आदि पर राजा के स्वामित्व को मान्यता दी गयी है।[6] मनु के अनुसार ''भूमि के नीचे दबे खजाने और खानों से प्राप्त वस्तुओं में राजा का एक भाग होता है।''[7] इससे प्रमाणित होता है कि शासक का भू–राजस्व ग्रहण करने तथा सुव्यवस्था स्थापित करने के कारण भूमि पर आंशिक स्वामित्व था। भू–स्वामित्व के संदर्भ में व्यवस्थाकारों के मत में भी हमें अन्तर्द्वन्द दिखाई पड़ता है। पूर्व मध्यकाल के टीकाकारों का मत था कि स्वामित्व का अर्थ है कि स्वामी उस वस्तु को अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सके।[8] इस कसौटी पर भूमिखंडों पर व्यक्ति विशेष का स्वामित्व मानने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। किन्तु के.पी. जायसवाल पूर्ण रूप से व्यक्ति विशेष को ही भूमि का स्वामी मानने के पक्ष में थे। उनके इस मत का यू.यन. घोषाल और ए.एल. बाशम ने तर्क देकर विरोध किया है। प्राचीन भारत में

विधिवेत्ता भूमि के स्वामित्व के विषय में स्पष्टतः एक मत नहीं थे। कुछ व्यक्ति विशेष को और कुछ राजा को स्वामी मानते थे। वास्तविकता यह थी कि व्यक्ति विशेष भूमिखण्ड का स्वामी तो था किन्तु अधिपति के रूप में उसे बिक्री करने या दान देने के लिए राजा और ग्रामवृद्धों की अनुमति लेनी पड़ती थी।[9]

जहाँ तक भूमिदान का प्रश्न है ऋग्वेद में इसका कोई उल्लेख नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में भूमिदान का निषेध किया गया है।[10] किन्तु बौद्ध एवं मौर्य काल में भूमिदान में दी जाने लगी थी। महाभारत में भूमि दान की प्रशंसा की गई हैं। गुप्तकाल[11] में भूमिदान का प्रचलन बहुत बढ़ गया था। भूमिदान मुख्य रूप से ब्राह्मणों, मन्दिरों, विहारों को दिया जाता था। किन्तु धीरे–धीरे अधिकारियों, रानियों, राजकुमारों तथा जागीरदारों को भी भूमि दान में मिलने लगी।

भूमिदान सम्बन्धी प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य प्रथम सदी ई0पू0 का है जिसके अनुसार सातवाहनों ने महाराष्ट्र में अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर पुरोहितों को उपहार स्वरूप एक गांव दान में दिया।[12] उषावदात द्वारा कार्ले में 16 गांव दान देने का उल्लेख है। प्रशासनिक अधिकारों के छोड़ने (कर मुक्ति) का प्रमाण भी सबसे पहले गौतमीपुत्र शातकर्णि के अभिलेखों से प्राप्त होता है।[13] फिर भी उत्तर भारत के विशाल भू–भाग पर शासन करने वाले शकों तथा कुषाण शासकों के भूमि अनुदान के प्रमाण नहीं मिलते। अभी तक मात्र एक प्रमाण मिला है जो द्वितीय शताब्दी ई0[14] का है जिसमें यज्ञ में पुरोहिती करने वाले ब्राह्मण को एक गांव दान में देने का उल्लेख है जो इलाहाबाद के पास कहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि कुषाणों में भूधारण अधिकार की अक्षयनीवीय प्रणाली भू–राजस्व के स्थायी दान से प्रारम्भ हुई जिसका प्रमाण गुप्त युग में आकर उत्तरी बंगाल के अभिलेखों से प्राप्त होता है।

गाँव भी दान में दिये जाते थे, किन्तु जहाँ भूमि पर ग्रहीता का स्वामित्व हो जाता था, गाँव से वह केवल राजस्व ले सकता था।[15] जुन्नार के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि अनेक खेतों के स्वामियों ने अपने खेतों को इसलिए दान में दिया था कि उसकी आय पुण्य कार्यों में लगाई जा सके।[16] कुछ निगम भी खेत के स्वामी होते थे।[17] अक्षयनीवि (endowment) के रूप में दान में दिए जाने वाले गांवों को दान में प्राप्त करने वाला व्यक्ति न तो गिरवी रख सकता था और न बेच सकता था। राजा को समस्त भूमि का स्वामी माना जाता था। जब कोई खेत खरीदकर भूमिखण्ड अनुदान में दिया जाता था तो इसकी सूचना गाँव के मुखिया, ब्राह्मणों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों, सरकारी अधिकारियों आदि को दी जाती थी जिससे कि उस भूमि–अनुदान से किसी व्यक्ति के साथ अन्याय न हो। राजा तभी किसी भूमि–खण्ड को दान में दे सकता था जब उस पर उसका निजी स्वामित्व हो, अन्यथा भूमिखण्ड के स्वामी से स्वामित्व प्राप्त करके ही (क्रय करके) दान दे सकता था।

नासिक के एक अभिलेख में उल्लेख मिलता है उषवदात ने एक बौद्ध बिहार को दान में देने के लिए एक ब्राह्मण से 40,000 कार्षापण में एक भू–क्षेत्र खरीदा था।[18] कभी–कभी भूमिखण्ड बौद्ध और जैन संघों को भी अनुदान में दिया जाता था जिनके प्रशासकों के बदलते रहने के कारण उनके अधिकार–पत्र ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कराये जाते थे। भूमि अनुदानों का सरकारी कार्यालयों में पंजीकरण भी कराया जाता था सम्भवतः उसके पीछे का उद्देश्य सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना था।

चोल साम्राज्य में मन्दिरों को दी जाने वाली भूमि 'देवदान' 'देवाग्रहार' या 'देवभोग' कहलाती थी। मठो को दी गई भूमि 'मडप्पुर' और ब्राह्मण को दान दी गई भूमि 'ब्रह्मदेय' कहलाती। ब्राह्मण समुदाय को दी गई भूमि 'अग्रहार' या 'गणभोग्य' कही जाती। इसके अतिरिक्त सामुदायिक या पंचायती भूमि भी होती थी जिनकी आय से ग्रामसभा द्वारा सिचाई की व्यवस्था और मन्दिर के सेवाकार्य की व्यवस्था की जाती थी। सामूहिक प्रयास से सिंचित भूमि पर या तो राज्य द्वारा लगान कम कर दी जाती थी अथवा बदले में राज्य द्वारा भूमि उपहार स्वरूप प्रदान की जाती थी।[19–]

संदर्भ :

1. मनु., 8. 197–199
2. योऽभियुक्तः परेतः स्यात्तभ्य रिक्थी तमुद्धरेत्।

   न तत्र कारणं भुक्तिरागमेन बिना कृता। याज्ञ., 2.29
3. नारद. 1.87
4. नारद., 1.91
5. मनु., 8.197–199
6. मिलिंद., पृ. 359
7. निधीनां तु पुराणानां धातूनामेव च क्षितौ।

   अर्धभाग्रक्षणाद्राजा भूमेरधिपतिर्हि सः।। मनु. 8.39; राजा भू–राजस्व के रूप में जो छठाँ हिस्सा प्राप्त करता था उसे 'भाग' कहा जाता था।
8. यू. यन घोषाल ने एग्रेरियन सिस्टम इन इंडिया के पृष्ठ 65 और उसके बाद के पृष्ठों में लिखा है कि जीमूतवाहन, नीलकंठ और मित्रमिश्र ने यह मत व्यक्त किया है। एस.पी. सरकार द्वारा सम्पादित

व्यवस्थाचंद्रिका में भी इसी मत की पुष्टि की गई है। गोपाल, लल्लन जी, हिस्ट्री ऑव एग्रीकल्चर इन ऐशिएण्ट इण्डिया, पृष्ठ 54 पर उद्धृत

9. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पृ. 34

10. शत0ब्रा0, 8.7.15

11. फ्लीट, पृ0 52, 93, 106, 117, 121, 125, 136, 191, 196, 243

12. सरकार, डी0सी0 (सम्पादित), सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्र ऐण्ड सिविलाइजेशन, जिल्द– I, पृ0 194–196, पंक्ति 11; शर्मा, आर0एस0, इण्डियन फ्यूडलिज्म, पृ0 2

13. सरकार, वही, नासिक केव इंस्क्रिप्शन ऑव गौतमीपुत्र शातकर्णि, वर्ष 18 = 124 ई0, पृ0 197–99 तथा वर्ष 24, 130 ई0, पृ0 200–201; शर्मा, वही, पृ0 2

14. इपि. इण्डि., जिल्द–24, पृष्ठ 245–251

15. लल्लनजी गोपाल, हिस्ट्री ऑफ एग्रीकल्चर इन इण्डिया, पृ0 68

16. वही, पृ0 64, लूडर्स लिस्ट संख्या 1162, 1163, 1164, 1167 उद्धृत

17. इपि. इण्डि., जिल्द–1, संख्या 20 व 21

18. नासिक अभिलेख संख्या 10

19. के0ए0एन0 शास्त्री, द चोलज, मद्रास, द्वितीय संस्करण–1955